E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 3, Issue- 9 | September 2026

भारत में नील की खेती और व्यापार पर डच यात्री की रिपोर्ट

रितु चंदर
डॉ. बी. आर. आंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

सार लेख

प्रस्तुत शोध-लेख डच व्यापारी और वीओसी (वेरिनिग्दे ओस्ट-इंडिशे कंपनी) प्रतिनिधि फ्रांसिस पेलसार्ट की रिपोर्ट रिमॉन्स्ट्रैन्टी (१६२६) के नील-अध्याय पर आधारित है। पेलसार्ट ने १६२० से १६२७ तक आगरा में वीओसी के वरिष्ठ प्रतिनिधि के रूप में कार्य किया और इस अवधि में बयाना तथा आसपास के नील-उत्पादक क्षेत्रों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया। यह लेख पेलसार्ट के विवरण के आधार पर जहाँगीर कालीन भारत में नील की खेती, उत्पादन-प्रक्रिया, गुणवत्ता-परीक्षण, बाज़ार-व्यवस्था और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के स्वरूप का विश्लेषण करता है। लेख में नील की तीन किस्मों—नौती, ज़ियारी और कटेल—का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा बयाना, घनोआ, हिंदौन, बस्सौवेर और तोरा जैसे प्रमुख उत्पादन-केंद्रों की भौगोलिक-व्यापारिक स्थिति का परीक्षण किया गया है। इसके अतिरिक्त लेख में नील की मिलावट की समस्या, मूल्य-निर्धारण की जटिलताएँ, अर्मेनियाई और हिंदू व्यापारियों की भूमिका, तथा डच और अंग्रेज़ कंपनियों के बीच व्यापारिक प्रतिस्पर्धा का भी विवेचन किया गया है। पेलसार्ट का यह विवरण केवल एक व्यापारिक रिपोर्ट नहीं है, बल्कि यह मुगल कालीन कृषि-अर्थव्यवस्था, ग्रामीण उत्पादन-प्रणाली और वैश्विक व्यापार-नेटवर्क में भारत की स्थिति को समझने का एक दुर्लभ प्राथमिक स्रोत है। यह लेख यह भी स्थापित करता है कि पेलसार्ट का नील-विवरण परवर्ती इतिहासकारों—विशेषतः मोरलैंड—की उस थीसिस की पुष्टि करता है जिसमें मुगल कालीन भारत को एक शोषणकारी आर्थिक संरचना के रूप में देखा गया है, जहाँ किसान और कारीगर उत्पादन करते थे किंतु लाभ का बड़ा हिस्सा व्यापारी वर्ग और राज्य को मिलता था।

मुख्य शब्द : नील, बयाना, रिमॉन्स्ट्रैन्टी, पेलसार्ट, वीओसी, जहाँगीर, मुगल कालीन व्यापार, कृषि-र्थव्यवस्था

परिचय —

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में यूरोपीय देशों में नील की माँग असाधारण रूप से बढ़ रही थी। ऊनी और सूती वस्त्रों की रँगाई के लिए भारतीय नील का कोई विकल्प नहीं था, और इसीलिए डच तथा अंग्रेज़ व्यापारिक कंपनियाँ भारत में नील-व्यापार पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए संघर्षरत थीं। इस पृष्ठभूमि में फ्रांसिस पेलसार्ट (१५९५–१६३०) को वीओसी ने १६११ में आगरा भेजा, जहाँ वे १६२७ तक रहे और वरिष्ठ प्रतिनिधि के पद तक पहुँचे। पेलसार्ट ने अपनी सेवा-समाप्ति से पहले १६२६ में रिमॉन्स्ट्रैन्टी नामक एक विस्तृत रिपोर्ट लिखी, जो वीओसी के निदेशकों के लिए थी और जिसमें उन्होंने भारतीय व्यापार, कृषि, समाज और प्रशासन का गहन विवरण प्रस्तुत किया। यह रिपोर्ट उस समय एक गोपनीय व्यापारिक दस्तावेज़ थी और लगभग तीन शताब्दियों तक प्रकाशित नहीं हुई। १९२५ में मोरलैंड और गेल ने हेग के संग्रहालय में सुरक्षित मूल डच पांडुलिपि की तस्वीरों के आधार पर इसका पूर्ण अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया। रिमॉन्स्ट्रैन्टी का नील-अध्याय इस पूरे ग्रंथ का सबसे विस्तृत और तकनीकी दृष्टि से सबसे समृद्ध खंड है। पेलसार्ट ने बयाना और उससे संलग्न क्षेत्रों में स्वयं जाकर नील की खेती और उत्पादन-प्रक्रिया का प्रत्यक्ष

Published: 11 September 2026
DOI: https://doi.org/10.70558/SPIJSH.2026.v3.i9.45906
Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

अध्ययन किया था। उनका विवरण नील की बुआई से लेकर बाज़ार तक की पूरी श्रृंखला को उजागर करता है—फसल की किस्में, वात-प्रक्रिया, गुणवत्ता-परीक्षण, मिलावट की समस्या, व्यापारिक नेटवर्क, मूल्य-उतार-चढ़ाव और प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव। यह लेख पेलसार्ट के इस नील-विवरण को ऐतिहासिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। शोध का उद्देश्य यह दिखाना है कि एक यूरोपीय व्यापारी की यह रिपोर्ट जहाँगीर कालीन भारत की कृषि-व्यवस्था और वैश्विक वाणिज्य में नील की केंद्रीय भूमिका को किस प्रकार रेखांकित करती है।

लेख —

नील की बुवाई जून में होती है जब पहली वर्षा हो चुकी हो। एक बीघा अर्थात् ६० हॉलैण्ड हाथ के वर्गाकार क्षेत्र में १४ से १५ पाउण्ड बीज बोया जाता है। यदि वर्षा सामान्य रहे तो फसल चार महीनों में एक हाथ की ऊँचाई तक बढ़ती है और सितम्बर के अन्त अथवा अक्टूबर के आरम्भ में, जब वह पूरी तरह पक जाती है, काटी जाती है।(इस विवरण को समझने के लिए यह स्मरण रखना आवश्यक है कि पेलसार्ट के समय नील की फ़सल को सामान्यतः मूलठूँठ से ही उगाया जाता था। पहले वर्ष की कटाई को "नौती" कहा जाता था; दूसरे वर्ष की कटाइयाँ "जरही" (अथवा जैसा पेलसार्ट ने लिखा है, "ज़िआरी") कहलाती थीं; जबकि अंतिम फ़सल को बीज के लिए छोड़ने के बदले कभी-कभी "कटेल " नामक एक अंतिम कटाई भी की जाती थी। अकबर का बीघा ६० गज़ का एक वर्ग था; संभव है पेलसार्ट ने भूलवश गज़ के स्थान पर "एल्स" लिख दिया हो, परंतु इससे अधिक संभावना यही है कि बयाना का स्थानीय बीघा शाही मानक से छोटा रहा हो। "पुट" शब्द, जिससे वे विनिर्माण में प्रयुक्त पात्रों को दर्शाते हैं, इतने विस्तृत अर्थों वाला है—छिद्र, तालाब, गड्ढा, कुआँ—कि अनुवाद में इसे यथावत् रखना ही उचित प्रतीत हुआ, बजाय किसी विशेष प्रतिशब्द के साथ ग़लत भाव जोड़ने का जोख़िम उठाने के। आगे दिया गया विवरण ऐसे पात्रों की ओर संकेत करता है जो आधुनिक टंकियों से बहुत भिन्न नहीं हैं।) नील की पत्तियाँ गोल होती हैं और हमारे देश की रू घास से कुछ मिलती-जुलती हैं। कभी-कभी जाड़ा इतनी जल्दी आ जाता है कि यदि कटाई में अधिक देर हो जाए तो नील प्रसंस्करण में अपना रंग खो देता है और बिना चमक के भूरा निकलता है, क्योंकि वह सर्दी सहन नहीं कर सकता। यदि नौती [पहली फसल] में घास खूब उगे तो यह भारी पैदावार का शुभ संकेत है, यद्यपि तब नील की जड़ों को क्षति और विकास में देरी से बचाने के लिए महँगी निराई करानी पड़ती है। कटाई के समय पौधों को ज़मीन से एक बित्ते की ऊँचाई पर काटा जाता है और अगले वर्ष उन्हीं ठूँठों से ज़ियारी [दूसरी अथवा पेड़ी फसल] उगती है। एक बीघे की पैदावार प्रायः एक पुट में डाली जाती है और १६ से १७ घण्टे भिगोने दी जाती है। पुट की परिधि लगभग ३८ फुट और गहराई एक सामान्य मनुष्य की ऊँचाई के बराबर होती है। फिर पानी को कुछ नीचे बने एक गोल पुट में बहा दिया जाता है जो ३२ फुट परिधि और ६ फुट गहरा होता है। दो-तीन आदमी पुट में खड़े होकर नील को अपनी बाँहों से आगे-पीछे चलाते हैं और इस निरन्तर गति से पानी गहरा नीला रंग सोख लेता है। फिर इसे १६ घण्टे और स्थिर रहने दिया जाता है जिस दौरान तत्त्व अथवा पदार्थ गोल पुट के तले में कटोरे के आकार के बर्तन में बैठ जाता है। तब तले के स्तर पर बने एक निकास से पानी बहा दिया जाता है; जो नील नीचे बैठ गया है उसे निकालकर सूती कपड़ों पर रखा जाता है जबतक वह साबुन जितना ठोस न हो जाए, तब उसकी गोलियाँ बनाई जाती हैं। पुट के तले में राख बिछाई जाती है ताकि एक पपड़ी बन जाए। प्रत्येक पुट की सामग्री को फिर एक मिट्टी के बर्तन में रखा जाता है जिसे प्रकाश और हवा रोकने के लिए कसकर बन्द कर दिया जाता है ताकि वह अधिक सूख न जाए, क्योंकि यदि नील एक घण्टे के लिए भी हवा में खुला रहे तो उतने ही समय धूप में रखने की अपेक्षा कहीं अधिक सूख जाता है। प्रत्येक पुट की सामग्री (जिसे ददेरा कहते हैं) पौधे की पैदावार के अनुसार प्रायः १२ से २० सेर होती है, अर्थात् जब किसान अथवा अन्य व्यापारी हमें बेचते हैं। ढुलाई और गट्ठरों में रखने के दौरान यह प्रति मन पूरे ५ सेर और सूखती है। यह नौती नील रंग में भूरा और गुण में मोटा होता है और आँख से देखकर अथवा

छूकर आसानी से पहचाना जा सकता है। यह ऊनी और अन्य भारी कपड़ों की रँगाई के लिए अधिक उपयोगी है क्योंकि यह ज़ियारी की अपेक्षा अधिक चलता है।

अक्टूबर में एक बित्ते की ऊँचाई पर छोड़े गए ठूँठ फिर उगते हैं और अगले अगस्त के आरम्भ में जब फसल पूरी आधी हाथ ऊँची हो जाती है तो उसे नौती के लिए वर्णित विधि से काट लिया जाता है। जब वर्षा अनुकूल हो अथवा रही हो तो कभी-कभी ज़ियारी के पौधे इतने लहलहाते हैं कि तीन कटाइयाँ होती हैं—एक अगस्त के आरम्भ में, एक सितम्बर के आरम्भ में और एक नौती की कटाई के समय, इस अन्तिम फसल को काटेल कहते हैं। जब ऐसा होता है तो यह निश्चित संकेत है कि नील सस्ता होगा।

ज़ियारी नील गुण में नौती से श्रेष्ठ है और बैंगनी रंग का घोल देता है। इसकी गुणवत्ता भीतर से देखे बिना भी आसानी से परखी जा सकती है क्योंकि यह नौती की अपेक्षा हाथ में बहुत हल्का होता है। नील को निश्चितता से परखने के लिए इसे दोपहर से पहले धूप में देखना चाहिए। यदि शुद्ध हो तो यह इन्द्रधनुष की भाँति चमकेगा और विभिन्न रंग दिखाएगा जिससे रंग के बारे में कोई निश्चित राय बनाना कठिन हो जाता है। यदि इसमें रेत अथवा मिट्टी मिली हो तो धूप में मिलावट छिप नहीं सकती। ऐसी मिलावट आम बात है, कभी-कभी वज़न बढ़ाने के लिए जानबूझकर की जाती है और कभी हवा से भी हो जाती है यदि गोलियाँ अभी कच्ची और अनसूखी हों और रेतीली ज़मीन पर सूखने छोड़ दी जाएँ।

काटेल अत्यन्त घटिया होता है, कड़ा, बेरंग, बिना चमक, कोयले जैसा। यह विक्रेताओं से आधे दाम पर खरीदा जाता है और लाठियों से पीटकर चूर्ण बनाया जाता है। पकड़ में न आने के लिए इसे ज़ियारी और नौती में मिलाकर गट्ठर बनाए जाते हैं, जिन पर थैले खोलते समय और पुट में भी सावधानी से नज़र रखनी चाहिए। जो व्यक्ति थैलों अथवा बने-बनाए गट्ठरों में खरीदे, उसे काटेल अथवा घटिया नौती की तलाश में रहना चाहिए जो जैसा मैंने कहा चूर्ण बनाकर मिलाया जाता है। जो व्यक्ति पुट में नील खरीदे अथवा प्राप्त करे, उसे स्वयं देखना चाहिए कि ऊपर और नीचे एक-समान हो, क्योंकि कभी-कभी ऊपर ज़ियारी और नीचे नौती रखी जाती है और कभी ऊपर का भाग पूरी तरह सूखा और हल्का जबकि नीचे का भाग गीला और मिट्टी जैसा भारी होता है। यह उन सभी के लिए एक सच्ची चेतावनी है जिन्हें नील प्राप्त करना हो। इसके अलावा जहाँ परिस्थितियाँ अनुमति दें, नील को वज़न करने के लिए सदा धूप में खोलना चाहिए क्योंकि तब गोलियाँ तोड़ने पर अच्छी-बुरी गुणवत्ता स्पष्ट हो जाती है, किन्तु यह काम लगातार करते रहना चाहिए। यह इसलिए भी लाभकर है क्योंकि धूप में उठाने-रखने और वज़न करने से नील बहुत अधिक सूखता है। वर्तमान समय में तथापि अनेक उत्पादक काटेल की कटाई नहीं करते, क्योंकि जहाँ तीनों किस्मों की उत्पादन-लागत बराबर है, वहाँ काटेल की पैदावार ज़ियारी की आधी भी मुश्किल से होती है (अर्थात् प्रति पुट १५ से २० सेर), पत्तियों में तत्त्व बहुत कम होता है। इसलिए काटेल की फसल अगले वर्ष की नौती के लिए बीज देने हेतु खेत में ही छोड़ दी जाती है।

इन तीन किस्मों को समझाने के लिए सबसे उचित तुलना यह है कि नौती उस बढ़ते हुए किशोर की भाँति है जो अभी अपनी पूर्ण शक्ति और यौवन तक नहीं पहुँचा; ज़ियारी उस पुरुष की भाँति है जो अपने पूर्ण यौवन में है; और काटेल उस वृद्ध जर्जर मनुष्य की भाँति है जो अपनी यात्रा में दुःख की अनेक घाटियाँ और कष्ट के अनेक पर्वत पार कर चुका है—जो न केवल चेहरे से बदला और झुर्रियों से भरा है, बल्कि धीरे-धीरे असहाय जरा-जीर्णता में डूब रहा है। मैं यह भी जोड़ूँगा कि तत्त्व और गुण में नौती काटेल से बहुत आगे है, क्योंकि जहाँ ज़ियारी और नौती के बीच केवल एक रुपये प्रति मन का अन्तर है, वहाँ दोनों मिलकर काटेल से पूरे दोगुने मूल्य के हैं।

खड़ी नील की फसल अन्य फसलों और उत्पादों की तुलना में कहीं अधिक आपदाओं और विपत्तियों के प्रति संवेदनशील है। नौती की बुवाई के बाद यदि वर्षा कम हो तो बीज ज़मीन में ही सूख जाता है, जबकि अत्यधिक वर्षा

और धूप की कमी पौधों को शीघ्र ही सड़ा देती है अथवा एक-दूसरे पर गिरा देती है। कभी-कभी सफल नौती के बाद दिसम्बर, जनवरी अथवा फरवरी में अत्यधिक सर्दी उन जड़ों को इतनी क्षति पहुँचाती है जिनसे ज़ियारी निकलनी चाहिए कि फसल की कोई आशा नहीं रहती। और यदि यह न हो, किन्तु वर्षा देर से आए और जून अथवा जुलाई के पहले पखवाड़े में पानी न पड़े, तो जड़ें सूख जाती हैं और फसल को कोई पोषण नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त पिछले तीन वर्षों से लगातार जून, जुलाई और अगस्त में टिड्डियाँ इतनी बड़ी संख्या में आई हैं कि कभी-कभी सूरज भी ढक जाता था और जहाँ भी बैठीं, ज़मीन इस तरह साफ कर दी कि एक तिनका भी नहीं बचा। बायना के आसपास का क्षेत्र उनसे इस कदर पीड़ित रहा कि जहाँ तक नज़र जाती थी, नील के पूरे खेत चट कर गईं और केवल नंगे ठूँठ छोड़ गईं—इसी कारण नील का भाव बहुत ऊँचा बना रहा। इसके अलावा सन् १६२१ के सितम्बर में वर्षा इतनी अधिक और निरन्तर रही कि सारा देश जलमग्न हो गया। नील की फसल इतनी आशाजनक थी कि किसानों को डर था कि उसे खरीदने के लिए पर्याप्त व्यापारी नहीं मिलेंगे, किन्तु वह इस तरह बह गई कि जो बचा उससे ४०० गट्ठर भी नहीं निकल सकते थे। फलतः अनेक सम्पन्न लोग जो जीवन भर नील की खेती में लगे रहे थे, इतनी दरिद्रता में आ गए कि आज भी पहले जितनी नील की बुवाई नहीं होती। बायना के निकटवर्ती क्षेत्र में नील की पैदावार ४००० गट्ठर हुआ करती थी, किन्तु अब अधिक से अधिक उसका आधा भी मुश्किल से होती है।

उस कस्बे के निकट बनाया जाने वाला असली बायना नील ३०० गट्ठर से अधिक नहीं होता, किन्तु यह आसपास के अन्य गाँवों की पैदावार से कहीं उत्तम है। यह श्रेष्ठता कस्बे के निकट के कुओं के खारे पानी के कारण है, क्योंकि मीठे पानी के प्रयोग से नील कड़ा और मोटा हो जाता है। दो कुएँ लगभग पास-पास भी हो सकते हैं, एक खारे पानी का और दूसरा मीठे पानी का। ऐसे में खारे पानी से तैयार पौधे का नील, उसी खेत से काटे गए और मीठे पानी से तैयार पौधे के नील की तुलना में कम से कम एक रुपया प्रति मन अधिक मूल्यवान होता है।

जिन गाँवों में नील बनाया जाता है, उनका विवरण पाँच प्रमुख स्थानों के अन्तर्गत इस प्रकार है:

१. बायना। एब्राहेमेदेबात (१ कोस), सेरको (४ को॰), उच्चिएन [उज्जैन] (६ को॰), पातेहिउना [? पचौना] (५ को॰), त्सोनुआ [सनावा] (४ को॰), पिनिजोरा (६ को॰), मउनाना (६ को॰), बिरामपुर (४ को॰), मेलेकपुर [मालिकपुर] (४ को॰), बेरेत्था (५ को॰), अज़ेनाउलि (४ को॰), बात्ज़ियोरा [बछोरा] (४ को॰), पेदाउर्ले (४ को॰), गोरदहा (५ को॰), हेल्लेक (७ को॰), नादे बेइज (१० को॰), पेहेकेर्त्सिए (७ को॰), कोरेका (५ को॰), ख़ोन्दिएर (५ को॰), रोदाउल्केरा (४ को॰), निम्बेरा (७ को॰), बेरुआ (५ को॰), रात्सियोना (७ को॰), इन्दियारा (४ को॰), त्सेनेओर्पाना (५ को॰), लातेहोरा (४ को॰)।

२. घनोआ, बायना से १० कोस पश्चिम। महल (२ को॰), रूबास (२ को॰), त्सेत्सोंन्दा [? सिरसौंदा] (१½ को॰), दाबेर (२ को॰), महलपुर (१ को॰), गोरस्सा (१ को॰), दानाघम (२ को॰), बोकोलिए [बखौली] (१ को॰), बर्रावा (१½ को॰), ओर्देला (¾ को॰), ज़ियासेवोलिए [? जाजावली] (१½ को॰), फेतापुर (५ को॰)।

३. बस्सौवेर, बायना से १० कोस पूर्व। वेयेर (३ को॰), रात्सौलपुर [रसूलपुर] (४ को॰), हिस्सौन्ला (४ को॰), त्सेर्रेस (२ को॰), बोरोलिए (१¼ को॰), ज़ियारातहारा (३ को॰), पान्त्ला (२½ को॰), त्ज़ेत्ज़ोलिए [? चचौली] (३ को॰), त्सोनोहेर (६ को॰), त्सोन्केरि (६ को॰)।

४. हिन्दौन, बायना से १० कोस। खेरा (२ को॰), ज़ियामाएल्पुर [जमालपुर] (२ को॰), कोट्टोपुर (२ को॰), पारिकानेपुर (३ को॰), ओसिएर्पुर [वज़ीरपुर] (६ को॰), त्सेर्रूत (५ को॰), सिल्तोइओअलि (६ को॰), नार्दौलिए (६ को॰)।

५. तोरा, बायना से १८ कोस, जिसके अन्तर्गत कई गाँव हैं। यहाँ प्रतिवर्ष केवल लगभग २०० गट्ठर नील उत्पन्न होता है। रंग में यह बैंगनी की अपेक्षा भूरा अधिक होता है और गोलियाँ अन्यत्र की तुलना में बहुत छोटी बनाई जाती हैं।

अन्य स्थानों पर भी बड़ी मात्रा में नील होता है—जैसे कोइल अथवा गोर्सा जो नदी के दूसरे किनारे पर आगरा से ३० कोस की दूरी पर है। इसकी अधिकांश पैदावार अर्मेनियाई, लाहौरी और काबुली व्यापारी खरीद लेते हैं। यह अच्छा नील है, किन्तु बायना जैसी प्रतिष्ठा नहीं रखता और इसीलिए हम अथवा अंग्रेज़ इसे नहीं खरीदते। परीक्षण के लिए कुछ गट्ठर खरीदे जाने चाहिए ताकि हमारे नियोक्ता बाज़ार में और रँगाई में अन्तर का निर्णय कर सकें, किन्तु इस वर्ष धन के अभाव में यह सम्भव नहीं हो सका। यदि यह सन्तोषजनक सिद्ध हो तो हम केवल बायना की पैदावार तक इतने सीमित नहीं रहेंगे। अच्छे-बुरे वर्षों को मिलाकर यहाँ की पैदावार १००० गट्ठर होती है।

मेवात आगरा से ३० कोस की दूरी पर एक क्षेत्र है, किन्तु पहाड़ियों और जंगलों के कारण यह अधिकांशतः राजा के विरुद्ध विद्रोह में रहता है। इस क्षेत्र के अनेक गाँवों में नील बनता है और वार्षिक पैदावार १००० गट्ठर अथवा उससे अधिक है, किन्तु यह घटिया और निम्न गुणवत्ता का होता है और प्रायः रेतीला होता है। यहाँ निर्माण की विधि बायना की अपेक्षा सरखेज की है—पौधे को भिगोना और पत्तियों से रंग निकालने के लिए आगे-पीछे चलाना, यह सब एक ही पुट में होता है, जबकि बायना अथवा गोर्सा में दो पुट काम में लाए जाते हैं जैसा पहले बताया जा चुका है। फलतः भाव बहुत कम है, मेवात में एक मन का भाव २० रुपये जब बायना का ३० रुपये चल रहा हो। इसका निर्यात बहुत कम होता है किन्तु हिन्दुस्तान भर में उन स्थानों पर पहुँचता है जहाँ नील नहीं होता। इस वर्ष तथापि हमने परीक्षण के लिए कुछ गट्ठर खरीदे हैं।

नील खरीदने में अपनाई जाने वाली नीति के बारे में मतभेद हो सकते हैं, किन्तु कई वर्षों के अनुभव पर आधारित मेरा अपना विचार यह है। जब पैदावार अच्छी हो, अर्थात् ज़ियारी को कोई क्षति न हुई हो और नौती के लिए वर्षा समय पर हुई हो, तो अगस्त के अन्त अथवा सितम्बर के आरम्भ में एक-दो अनुभवी व्यक्तियों को चनोआ अथवा आसपास के गाँवों में भेजना चाहिए और जो वास्तव में उत्तम हो वह खरीद लेना चाहिए। किन्तु यदि फसल कम होने की सम्भावना हो तो घनोआ में चुपचाप बैठे रहना और केवल उन्हीं सम्पन्न हिन्दू अथवा मुसलमान व्यापारियों से खरीदना बेहतर है जो वहाँ रहते हैं, जो वर्षों से इस व्यापार में हैं और जिन्होंने कई महीने पहले नील पर अग्रिम दे दिया है और उधारदारों को किसी और को न बेचने का वचन ले लिया है। ये व्यापारी थोड़े मुनाफे पर भी हमसे व्यापार करना अन्य खरीदारों की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं। इसके अलावा घनोआ में बहुत नील है जिसका आधा तो गाँव में ही बनता है। प्रश्न उठ सकता है कि यदि वे नील ले जाते हैं तो क्या हम वहाँ उसी भाव पर नहीं पा सकते? एक बार अथवा एक गाँव में शायद पा सकते हैं, किन्तु अगले ही दिन भाव कम से कम एक रुपया प्रति मन बढ़ जाएगा [और] व्यापारी कहेंगे कि उनका माल बिकाऊ नहीं है। बार-बार के व्यक्तिगत अनुभव से मेरा मत है कि ऐसे समय में माननीय कम्पनी के लिए यही अधिक लाभकर है कि खरीदार चुप बैठे रहें बजाय इसके कि एक गाँव से दूसरे गाँव भागते फिरें। अर्मेनियाई लोग यही करते हैं, भूखे लोगों की तरह भागते-दौड़ते रहते हैं जिनकी लालची आँखें बताती हैं कि परोसे गए भोजन से वे सन्तुष्ट नहीं, हर थाली को चखते हैं [और] दूसरे मेहमानों को अपना-अपना हिस्सा पाने की जल्दी करवाते हैं, किन्तु जैसे ही हर व्यंजन चख लिया, सन्तुष्ट हो जाते हैं और अधिक नहीं ले सकते। नील के बाज़ार में भी ठीक यही करते हैं, मानो पूरा माल खरीद लेंगे, भाव बढ़वाते हैं, स्वयं थोड़ा घाटा उठाते हैं और हमें तथा अन्य खरीदारों को, जिन्हें बड़ी मात्रा में खरीदना होता है, भारी नुकसान पहुँचाते हैं। हिन्दुओं को सबसे पहले खरीद में मुनाफे का लाभ मिलता है और यह वे उदार तौल के ज़रिए पाते हैं—किसानों को झगड़े और चापलूसी से मनाकर। पहले एक रिवाज था कि नील तौलते समय दोहरे कपड़े की एक थैली जिसमें १५२ पैसे होते, ५ सेर मानी जाती थी जिससे मन में पूरे एक सेर की अधिकता हो जाती थी। (अकबर का सेर ३० दाम का

होता था, और आगरा में "पैसा" शब्द से प्रायः "दाम" का ही अर्थ लिया जाता था; इस प्रकार ख़रीदारों को दो दाम तथा थैली के भार के बदले ५ सेर से भी अधिक मिल जाता था।) इसके अलावा जब नील गीला होता था तो हर तराज़ू के पीछे २० से ३० गोलियाँ तैयार रखते थे जो सूखने पर मन में पूरे ५ सेर कम हो जाती थीं; और पुराने रिवाज के अनुसार मन ४१ सेर माना जाता था, इस तरह कुल मिलाकर मन में ७ सेर अथवा उससे अधिक का बाट होता था जिससे खरीद की लागत बहुत घट जाती थी। उन दिनों नील इतना प्रचुर था कि किसान कभी-कभी घबरा जाते थे और बिचौलियों को खरीदार न मिलने पर १०० गट्ठर तक रोके रखने पड़ते थे। किन्तु सन् १६२१ में फसल बह जाने के बाद सारी पैदावार तत्काल बिक जाती है और अधिशेष नहीं के बराबर है। अब लगभग यह हो गया है कि गोलियाँ आधी छोटी बनाई जाती हैं, तौल पैसों अथवा ५ सेर के बाटों की जगह दहाई के बाटों से की जाती है ताकि अधिकता कम हो, और कुछ स्थानों में केवल १० अथवा १५ गोलियाँ तैयार रखी जाती हैं, इसलिए बाट बहुत कम रह गया है और खरीद में इससे कोई विशेष लाभ नहीं होता। मैं यह भी जोड़ूँगा कि सूखने से होनेवाला नुकसान अविश्वसनीय है, मेरा अनुमान है कि यहाँ ४ मन का एक गट्ठर हॉलैण्ड में केवल साढ़े तीन मन निकलेगा, जो हमारे माननीय नियोक्ताओं को सम्भवतः पहले ही आश्चर्यचकित कर चुका होगा।

बायना में भी एक खरीदार रखना आवश्यक है जहाँ बाज़ार अन्यत्र की तुलना में बहुत देर से खुलता है इसलिए अक्टूबर के आरम्भ में वहाँ जाना पर्याप्त है। इसका कारण यह है कि कस्बे में कुछ सम्पन्न और प्रतिष्ठित व्यापारी रहते हैं जिनमें प्रमुख मिर्ज़ा सादिक और ग़ाज़ी फ़ाज़िल हैं जो अधिकांश नील बोते हैं और जो कुछ मौसमों में केवल हमें ही बेचते हैं। भाव उन्हीं के घर पर तय होता है, प्रायः घनोआ अथवा अन्य गाँवों के भाव से एक रुपया प्रति मन अधिक, क्योंकि जैसा कहा जा चुका है, गुणवत्ता उत्तम है। और जब भाव तय हो जाता है—उससे पहले नहीं—तब कोई भी अपनी इच्छानुसार किसी को भी बेच सकता है। मिर्ज़ा सादिक के प्रति यह आदर-भाव इसलिए है क्योंकि वे बायना के सबसे पुराने [व्यापारी] हैं।

अब मैं बायना के नाम से प्रसिद्ध नील के बारे में विस्तार से लिख चुका हूँ। पिछले चार वर्षों से इसे हम, अर्मेनियाई और मुगल—तीनों मिलकर बड़ी प्रतिस्पर्धा से खरीदते रहे हैं। अर्मेनियाई और मुगल इसे इस्फहान भेजते हैं जहाँ से कुछ अलेप्पो जाता है। छह वर्षों में अंग्रेज़ों ने ६०० गट्ठर से अधिक नहीं खरीदा क्योंकि दुर्भाग्य, विपत्ति और कुप्रबन्धन के कारण उनकी व्यावसायिक स्थिति बहुत बिगड़ गई है। किन्तु यदि वे हमारे विरुद्ध खरीदारी आरम्भ करें, जैसा वे धन होने पर करना चाहते हैं, तो नील का भाव बढ़ना तय है।

निष्कर्ष —

पेलसार्ट का नील-विवरण कई स्तरों पर महत्त्वपूर्ण है। कृषि-इतिहास की दृष्टि से यह जहाँगीर कालीन भारत में नकदी फसल की उत्पादन-प्रणाली का सबसे प्रामाणिक समकालीन साक्ष्य है। पेलसार्ट ने जो विवरण दिया है—बुआई की दर, फसल-चक्र, वात-प्रक्रिया, बाट-माप की जटिलताएँ—वह किसी भारतीय स्रोत में इतनी सूक्ष्मता से उपलब्ध नहीं है। व्यापार-इतिहास की दृष्टि से यह विवरण उस वैश्विक नेटवर्क को उजागर करता है जिसमें बयाना का नील, आगरा और लाहौर के बाज़ारों से होकर, इस्फ़हान और अलेप्पो के रास्ते यूरोप पहुँचता था। डच, अंग्रेज़ और अर्मेनियाई व्यापारियों के बीच प्रतिस्पर्धा, हिंदू और मुस्लिम बिचौलियों की भूमिका, और मूल्य-निर्धारण की राजनीति—ये सब पेलसार्ट के विवरण में जीवंत रूप से उपस्थित हैं। सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से यह विवरण उस शोषण-चक्र को भी दर्शाता है जिसमें किसान प्राकृतिक आपदाओं—टिड्डी-दल, अत्यधिक वर्षा, असमय शीत—के सामने असहाय थे, जबकि व्यापारी वर्ग अग्रिम ऋण देकर उन्हें अपने अधीन रखता था। १६११ की बाढ़ का उल्लेख, जिसने एक ही वर्ष में पूरी फसल नष्ट कर दी और धनी किसानों को रातोंरात निर्धन बना दिया, इस भेद्यता का मार्मिक प्रमाण है। स्रोत के रूप में रिमॉन्स्ट्रैन्टी की एक सीमा यह भी है कि यह एक यूरोपीय व्यापारी का दृष्टिकोण

है जो अपनी कंपनी के लाभ को सर्वोपरि मानता था। फिर भी, पेलसार्ट की पर्यवेक्षण-क्षमता, भाषा-ज्ञान—वेन डेन ब्रोके ने स्वयं उनके हिंदुस्तानी भाषा के ज्ञान की प्रशंसा की थी—और सात वर्षों के प्रत्यक्ष अनुभव ने इस रिपोर्ट को असाधारण विश्वसनीयता प्रदान की है। संक्षेप में, पेलसार्ट का नील-विवरण मुगल कालीन भारत के आर्थिक इतिहास का एक अपरिहार्य प्राथमिक स्रोत है—जो एक साथ कृषि-प्रौद्योगिकी, वैश्विक व्यापार और ग्रामीण जीवन की वास्तविकता को अभिलेखित करता है।

संदर्भ सूची —

1. डच यात्री फ्रान्सिस्को पेलसार्ट का जहाँगीर कालीन भारत, 2026, हिन्दी अनुवाद- के. पी. सिंह, वोल्फ प्रकाशन, पृष्ठ-३१।

2. वही, पृ. ३२।

3. वही, पृ. ३३।

4. वही, पृ. ३४।

5. वही, पृ. ३५।

6. वही, पृ. ३६।

7. वही, पृ. ३७।